चरित्र की सच्ची कुञ्जी

१

मनुष्य का मन ही सब कुछ करता धरता है। जैसा वह विचार करता है, वैसा ही बन जाता है। प्रत्येक कार्य के लिये विचार एक यंत्र है। विचार से ही मनुष्य चाहे तो इस पृथिवी को स्वर्गधाम बना सकता है, चाहे तो नरककुंड कर सकता है। जैसा मनुष्य के मन में रहता है, वैसा ही वाह्य में प्रकट होता है। चाहे अंधेरे में छिपकर कोई विचार किया जाए,

परन्तु यह भी प्रकट हुए विना नहीं रहता, वाह्य-स्थिति से उसका पता लगता है।

२

पवित्र हृदय में ईर्ष्या, द्वेष, स्वार्थ और पक्षपात के लिये स्थान नहीं होता। वह दया और प्रेम से परिपूर्ण होता है। उसे पाप और दुष्टता दिखलाई नहीं देती। ज्यों ज्यों मनुष्य दूसरों के दोषों को देखना छोड़ता है त्यों त्यों वह पाप, शोक और संताप से मुक्त हो जाता है।

३

बुराई अथवा भलाई दोनों बातों को करने की शक्ति तुम्हारे भीतर मौजूद है। अब तुम स्वयं अपने विचारों और कार्यों के पसन्द करने वाले हो, तुम स्वयं अपनी अन्तरङ्ग अवस्था के बनाने वाले हो। जो कुछ भी तुम बनाना चाहते हो उसकी शक्ति तुम में मौजूद है। तुम चाहे प्रेम और सत्य को ग्रहण करो चाहे द्वेष और मिथ्या को। सब कुछ तुम्हारे हाथ में है।

४

मनुष्य अपने को शुद्ध करके स्वर्गीय राज्य में प्रवेश कर सकता है और वह अपने को उसी समय शुद्ध कर सकता है जब वह निरन्तर इस बात का विचार करे कि मुझ में क्या क्या दोष हैं, क्या क्या त्रुटियाँ हैं। स्वार्थ को दूर करने से पहले उसको अच्छी तरह समझने और जानने की जरूरत है। स्वार्थ स्वयमेव दूर नहीं होगा और न स्वयमेव उनमें दूर होने की शक्ति ही है। जिस प्रकार प्रकाश से अन्धकार का विनाश होता है, उसी प्रकार अज्ञानता का ज्ञान से और स्वार्थ का प्रेम से नाश होता है।

५

जबतक स्वार्थ के वशीभूत हुए अपनी इच्छाओं की पूर्ति करने में लगे रहोगे, तबतक तुम सुख से वञ्चित रहोगे और अपने लिये दुःख और विपत्ति के बीज बोते रहोगे; परन्तु

जितना ही तुम दूसरों की सेवा करने और उनको लाभ पहुँचाने के उद्योग में लगोगे, उतना ही तुम्हें सुख मिलेगा और तुम हर्ष एवं आनन्द के फल प्राप्त करोगे।

६

स्वर्ग और नरक अन्तरङ्ग अवस्थाएँ हैं। यदि तुम स्वार्थसाधन में लगोगे और इन्द्रियों के दास बने रहोगे, तो तुम नरक में गिरोगे, परन्तु यदि तुम स्वार्थ को त्याग कर ज्ञान की उस अवस्था को प्राप्त करोगे, जिसमें मन और इन्द्रियों को बिलकुल वश में कर लिया जाता है और कषाय तथा वसना मन्द हो जाती हैं, तो तुम स्वर्ग में प्रवेश करोगे।

७

रुपया सच्ची दौलत नहीं है और न पद वा प्रतिष्ठा ही सच्ची दौलत है। अतएव उन पर भरोसा करना ऐसी चिकनी और ढालू ज़मीन पर खड़ा होना है जहां से पैर फिसलने

का भय है। तुम्हारी असली दौलत तुम्हारी नेकी है और तुम्हारी असली ताकत उस नेकी को ठीक २ काम में लाना है। अपने हृदय को शुद्ध कर लो—अपने दिल को साफ कर लो, तुम्हारा जीवन स्वतः सुधर जाएगा। विषय-वासना, राग-द्वेष, काम-क्रोध, लोभ-मोह, मद-माया, अहंकार, स्वार्थ और दुराग्रह ये सब निर्बलता के सूचक हैं। इनके विपरीत प्रेम, पवित्रता, नम्रता, सभ्यता, शील, संतोष, दया, अनुकम्पा, उदारता, निःस्वार्थता, इन्द्रिय-निग्रह और आत्मसंयम ये सब बल के सूचक हैं।

८

जो मनुष्य बाह्य में निर्धन है, परन्तु अन्तरङ्ग में धनवान है अर्थात् जिसके विचार उत्तम हैं, मन शुद्ध है, वह यथार्थ में धनवान है और दीन होने पर भी वह सुख और आनन्द की ओर जा रहा है।

९

जिस मनुष्य के हृदय में परोपकार का अङ्कुर विद्यमान है, जो सच्चे दिल से दूसरों का भला चाहता है वह रुपये पैसे की बाट नहीं देखता। वह रुपये के स्थान में अपने जीवन को अर्पण कर देता है। वह अपने मनसे स्वार्थ, द्वेष, कषाय और वासना को निकाल कर अपने और पराये का भेद भाव दूर कर, मित्र और शत्रु सब को लाभ पहुँचाता है।

१०

जैसे हम स्वयं हैं दूसरों को भी वैसा ही समझते हैं। जो मनुष्य अविश्वासी होता है, वह संसार भर को अविश्वासी समझता है। झूठे आदमी को संसार में ऐसा एक भी आदमी नहीं दीख पड़ता जो सच बोलता हो। ईर्ष्या और द्वेष रखनेवाले मनुष्य सब को अपने ही समान समझते हैं।

११

जिन लोगों ने अपनी आत्मा में परमात्मा का अनुभव कर लिया है, वे प्राणिमात्र में ईश्वर-दर्शन करते हैं।

१२

जिस आदमी ने रुपया कमाने में अपने ईमान को बेच डाला है वह सदा अपने तकिये के नीचे तमञ्चा रख कर सोता है और इस धोके में पड़ा रहता है कि इस दुनिया में बेईमान आदमी भरे हुए हैं जो उसके धन को उससे जबर्दस्ती छीनना चाहते हैं; और जो मनुष्य विषय-वासना में लिप्त रहते हैं वे साधु महात्माओं को भी ढोंगी और मक्कार समझते हैं।

१३

स्वास्थ्य का मूल साधन यह है कि अपने मन को वश में करो और अपने हृदय को विशुद्ध बनाओ। सफलता के

लिये दृढ़ विश्वास, सम्यक् श्रद्धा और निश्चल उद्देश्य रक्खो और शक्ति की प्राप्ति के लिये दृढ़ संकल्प करके इच्छा और वासना का मुँह काला कर दो।

१४

सच्चे सुख का वही हृदय अनुभव कर सकता है जो प्रेम, पवित्रता, सत्य और उदारता से परिपूर्ण हो। जिसका हृदय इनसे शून्य है उसे सुख का अनुभव नहीं हो सकता; कारण यह कि सुख का सम्बन्ध मन और हृदय से है। लालची आदमी चाहे क्रोड़पति क्यों न हो, किन्तु सदा नीच, पतित और घृणित रहेगा। परन्तु इसके विपरीत सच्चा, ईमानदार और दयालु मनुष्य, चाहे उसके पास धन संपदा कुछ भी नहीं हो, तो भी वह सदा सुखी रहेगा। यदि मनुष्य को संतोष नहीं है तो वह निर्धन है परन्तु जिसे संतोष है,

वह धनवान है और जो मनुष्य उदार है अर्थात् जो कुछ उसके पास है उसे दूसरों के लिये व्यय करता है वह और भी अधिक धनवान है।

१५

लाभ की इच्छा से किसी वस्तु का त्याग करना; इससे बढ़कर दुनिया में कोई धोका नहीं और न इससे बढ़ कर कोई दुःख या विपत्ति का कारण है, परन्तु किसी वस्तु का त्याग करना और स्वयं दुःख और कष्ट उठाना, इसका नाम वास्तव में जीवन का मार्ग है।

१६

केवल मन में बुराई से इनकार करना काफी नहीं है, किन्तु प्रति दिन उसकी असलियत को समझने और उसके छोड़ने का अभ्यास करना चाहिये। इसी प्रकार मन में भलाई को स्वीकार करना काफी नहीं है,

परन्तु निरन्तर उसको समझने और प्रवृत्ति में लाने का उद्योग करना चाहिये ।

१७

जिस मनुष्य के मन से ये विचार नहीं निकले हैं कि मुझे अमुक आदमी ने धोका दिया, अमुक ने मेरा निरादर किया ; वह अभी विजयी नहीं हुआ है, उसने अभी सत्य को प्राप्त नहीं किया है ।

१८

अपने मन में उत्तम विचारों को स्थान दो । वे विचार शीघ्र ही तुम्हारे वाह्य जीवन में उत्तम अवस्थाओं के रूप में प्रकट होंगे । प्रत्येक विचार जो तुम्हारे मन में आता है एक तीर के समान है । उसमें जितनी शक्ति और तेजी होगी, उसी के अनुसार वह दूसरे मनुष्यों के हृदय में जाकर असर करेगा और फिर लौटकर तुम पर अपना बुरा या भल

असर डालेगा । एक मन का दूसरे मन से परस्पर सम्बन्ध होता है और विचार-शक्तियाँ बराबर एक-दूसरे में आती जाती रहती हैं। स्वार्थ और अशांति के पैदा करनेवाले विचार नीच और नाशक शक्तियाँ हैं, उन्हें दुष्टता के दूत समझना चाहिये ।

१६

यदि तुम संसार में सुख और ऐश्वर्य प्राप्त करना चाहते हो तो तुम्हें उचित है कि राग-द्वेष, काम-क्रोध, लोभ-मोह, रति-अरति आदि मानसिक कषायों और वासनाओं को कम करो। जितना तुम अपनी मानसिक अवस्थाओं के अधीन रहोगे, उतना ही तुम इस जीवन में दूसरों के आश्रित रहोगे और वाह्य सहायता की इच्छा करोगे और जितना ही तुम अपनी मानसिक अवस्थाओं पर विजय प्राप्त करोगे उतना ही तुम स्वतंत्रता को प्राप्त करोगे ।

२०

इच्छा सांसारिक पदार्थों की होती है। आकांक्षा हार्दिक शांति के लिये होती है। मनुष्य सांसारिक वस्तुओं की जितनी इच्छा करता है उतना ही शांति से दूर होता जाता है और केवल उन्हीं वस्तुओं से वञ्चित नहीं रहता बल्कि सदा भिखारी बना रहता है। जबतक मनुष्य की इच्छा-वासना नहीं मिटती, शांति और संतोष का होना असंभव है। सांसारिक वस्तुओं की इच्छा कभी पूरी नहीं हो सकती। परन्तु शान्ति की उच्च आकांक्षा पूरी हो जाती है, और यह उसी समय सम्भव है जब स्वार्थ का सर्वथा नाश कर दिया जाय। उस समय पूर्ण सुख, शांति और आनन्द की प्राप्ति होती है।

२१

मोक्ष का राज्य कैसा है? पूर्ण ज्ञान और शांतिमय। उस में पाप का प्रवेश नहीं हो

सकता, किसी प्रकार कोई स्वार्थयुक्त विचार या कार्य उसके स्वर्णिम द्वारों में घुस नहीं सकता और किसी प्रकार का कोई कुत्सित भाव उसके प्रकाश को मंद नहीं कर सकता। उसका द्वार सब के लिये खुला है। जो चाहे उसमें जा सकता है, परन्तु वहां जाने की फीस देनी पड़ती है और वह फीस यह है कि सम्पूर्ण कर्मों का सर्वथा नाश कर दिया जाय।

२२

मनुष्य के प्रत्येक सुख को विच्छिन्न करने के लिये दुःख की तीक्ष्ण तलवार उसके सिर पर सदा लटकती रहती है और जो मनुष्य ज्ञान से शून्य है, उस पर गिरकर उसके आत्मा के सुख को छिन्न-भिन्न कर देती है।

२३

केवल जिह्वा को बंद रखने का नाम ही सच्चा मौन नहीं है—मन की वृत्तियों को रोकने का नाम मौन है। केवल जिह्वा को रोकने

और मन को चांचल, चलायमान तथा अशांत रखने से निर्बलता दूर नहीं होती एवं बल-प्राप्त नहीं होता। बल-प्राप्ति के लिये मन को मौनता की जरूरत है। हृदय के प्रत्येक भाग में मौन होना चाहिये। मनुष्य जितना ही अपने ऊपर विजय प्राप्त करेगा उतनी ही अधिक उसके मन में मौनता और शांति होगी।

२४

जितना ही तुम अपने भावों, इच्छाओं और विचारों को वशीभूत करने में सफलता प्राप्त करोगे, उतना ही तुम अपने भीतर एक नवीन और अव्यक्त शक्ति उत्पन्न होते हुए देखोगे और तुम्हें शांति एवं बल प्राप्त होगा।

२५

दुनिया में ऐसी कोई बुराई नहीं है जो मन में पैदा न हुई हो। हर एक बुराई का मन ही कारण है। दुःख, शोक और संताप का

सम्बन्ध सांसारिक नियमों में नहीं है और न उनका पृथक् अस्तित्व ही है। वे सब इस कारण से पैदा होते हैं कि हम पदार्थों के गुण धर्म से अपरिचित हैं।

२६

मनुष्य के जीवन का आधार मन है। मन से ही भिन्न २ दशायें उत्पन्न होती और बनती हैं। उन सब का फल भी मन ही भोगता है। मोह और ज्ञान के उत्पन्न करने और सत्यता के पह-चानने की शक्तियाँ भी मन के भीतर ही हैं। हमारा जीवन एक करघा है। उस पर मन-रूपी जुलाहा विचार-रूपी सूत से भले बुरे कामों के ताने-बाने करके चरित्र-रूपी वस्त्र को बनाता है और उस वस्त्र में अपने को ऐसे लपेट लेता है जिस प्रकार रेशम का कीड़ा। अपने मन को विशुद्ध करो, तुम्हारा जीवन भी सुंदर, सुखी और शांत होगा।

२७

प्रत्येक मनुष्य अपनी इन्द्रियों को अपने वश में करने का अभ्यास कर सकता है। निर्बल मनुष्य भी इसमें सफलता प्राप्त कर सकता है। इन्द्रिय-निग्रह से सद्गुण की प्राप्ति हो सकती है। नियमपूर्वक सच्चे धार्मिक जीवन के लिये इन्द्रिय-निग्रह सब से प्रथम और सब से अधिक आवश्यक है। जो मनुष्य इन्द्रिय-निग्रह कर लेते हैं अर्थात् जिनका मन और इन्द्रियाँ उनके वशमें होती हैं, वे सुख और आनन्द का अनुभव करते हैं। जो मनुष्य अपने मन को सत्य के अनुकूल बनाता है और अपने हृदय को स्वार्थ एवं वासना से रहित कर लेता है, वह स्वर्गीय राज्य में प्रवेश करता है।

२८

जिस मनुष्य ने अपने हृदय को राग, द्वेष, काम, क्रोध आदि कषायों और कुत्सित इच्छाओं

से रहित कर लिया है उसके सुख और आनन्द की कोई सीमा नहीं है और जो मनुष्य इन राग, द्वेष, काम, क्रोधादि कषायों में लिप्त होकर अपने स्वरूप को नहीं पहचानता वह अनन्त काल तक इस चतुर्गति संसार में भ्रमण करेगा।

२६

तुम अपनी स्थिति और अवस्था के स्वयं निर्माता हो। जितना तुम विषय-वासनाओं में लिप्त रहोगे और सांसारिक पदार्थों की इच्छा करोगे उतना ही दुःख उठाओगे और जितना तुम उनका त्याग करोगे, उतना ही सुख पाओगे। आत्मा के सम्बन्ध में आज तक जितने उत्तम और उपयोगी सिद्धान्त मालूम हुए हैं, उनमें सब से अधिक उपयोगी सिद्धान्त यह है कि मनुष्य अपने मन का राजा, अपने स्वभाव का कर्ता, अपनी स्थिति, अवस्था और प्रारब्ध का निर्माता है।

३०

जो कुछ भी तुम्हारे हृदय-मन्दिर में है, वह कभी न कभी अवश्य ही तुम्हारे जीवन में आ जायगा और तुम्हारा सम्पूर्ण कार्य-व्यवहार उसी के अनुसार होगा। प्रत्येक आत्मा उसी वस्तु को अपनी ओर आकर्षित करती है जो उसकी होती है। अन्य कोई वस्तु उसके पास नहीं आ सकती। यदि तुम दुनिया को सुधारना और उसके दुःखों और कष्टों को दूर करना चाहते हो तो पहले अपने को सुधार लो।

३१

सच्चे सुख की अवस्था वह अवस्था है जिसे आनन्द और शान्ति कहते हैं और जिसमें किसी प्रकार की इच्छा नहीं होती। इच्छाओं की पूर्ति से जो संतोष होता है वह क्षणिक और काल्पनिक होता है और उससे इच्छा की पूर्ति की और अधिक चाह होती है। समुद्र के समान इच्छा की कोई थाह या सीमा नहीं होती।

जितनी तुम उसकी पूर्ति करते जाते हो उतनी ही वह अधिक बढ़ती जाती है। इच्छा अपने सेवकों से सदा सेवा चाहती रहती है। उसकी कभी तृप्ति नहीं होती। इच्छा एक नरकागार है जिसमें सर्व प्रकार के दुःख और कष्ट आकर जमा हो गये हैं। इच्छाओं के त्याग करने से ही स्वर्ग की प्राप्ति होती है और वहाँ के यात्रियों को सर्व प्रकार के सुख उपलब्ध होते हैं।

३२

सब से बढ़कर यह बात है कि अपना एक उद्देश्य बनाओ जो उत्तम और उपयोगी हो, और उसकी पूर्ति करने में तन मन से लग जाओ। चाहे कैसी ही विपत्ति आय और कैसी ही कठिनाई उपस्थित हो, परन्तु अपने निश्चित उद्देश्य से पीछे मत हटो। याद रक्खो, जिस मनुष्य का कोई निश्चित उद्देश्य नहीं होता है, उसे किसी काम में भी सफलता नहीं मिल सकती।

२३

जब पाप और स्वार्थ का सर्वथा नाश हो जाता है, तब हृदय में परमानन्द होता है। आनन्द उसी हृदय में होता है जो स्वार्थ से रहित होता है। जिन लोगों का हृदय शान्त और विशुद्ध है वे ही आनन्द का अनुभव करते हैं। स्वार्थी मनुष्यों से आनन्द कोसों दूर रहता है। जिनका हृदय मलिन है, ईर्ष्या और द्वेष से भरा हुआ है, वे आनन्द से वञ्चित रहते हैं। आनन्द उन्हीं को प्राप्त होता है, जो प्रेम-मय होते हैं अर्थात् जिनमें निःस्वार्थ कूट-कूट कर भरा होता है। आनन्द और प्रेम का घनिष्ट सम्बंध है।

२४

प्राणिमात्र के साथ सर्वदा प्रेम करना, इसी का नाम सच्चा जीवन है। इस बात को जानकर नेक आदमी प्रेम में तन्मय हो जाता है और सब के साथ प्रेम करता है। न किसी से

वैर भाव रखता है, न किसी से द्वेष करता है; न किसी की निन्दा करता है और न किसी को अपना शत्रु समझता है। वह सब के साथ प्रेम करता है और सब को अपना मित्र समझता है। निःस्वार्थ प्रेम से सर्व प्रकार के पापों का नाश हो जाता है और वैर, विरोध, ईर्ष्या और द्वेष का मुंह काला हो जाता है।

३५

दुनिया में उस समय तक कोई उन्नति और सफलता नहीं हो सकती, जब तक कि कुछ हानि न उठाई जाय और स्वार्थ की आहुति न दी जाय। मनुष्य जितना अधिक अपनी विषय-वासनाओं का त्याग करेगा और अपने मन को उच्च उद्देश्य की पूर्ति के उपायों में लगाएगा, तथा अपने आत्मा के ऊपर विश्वास करना सीखेगा, उतना ही वह अधिक सफलता लाभ करेगा और उतने ही अधिक पवित्र और स्थायी उसके कार्य होंगे।

३६

जिस प्रकार अन्धेरी कोठरी में बन्द हुआ मनुष्य भी बाहर की रोशनी से इन्कार नहीं करता, उसी प्रकार तुमने जो अपने आसपास मोह, माया, स्वार्थ, अज्ञान और पक्षपात की दीवार बना रक्खी है, उसे ढाना शुरू कर दो और ज्ञान के प्रकाश को भीतर आने दो। विपत्ति थोड़े दिनों के लिये आती है और वह तुम्हारी ही पैदा की हुई है। तुम उनके योग्य हो और तुम्हें उनकी आवश्यकता है। कारण यह कि उनके सहन करने से और उनको अच्छी तरह समझ लेने से, तुम अधिक बलवान, ज्ञानी और सभ्य बन जाओगे।

३७

इस संसार में जीवों की भिन्न २ प्रकृति है। एक का स्वभाव दूसरे से नहीं मिलता है, और जब तक स्वभाव न मिले, तब तक प्रीति भी नहीं होती है। संसार में प्रीति केवल

स्वार्थ की है। जब तक स्वार्थ-सिद्धि होती है, तब तक ही प्रीति रहती है। स्वार्थ के विना कदापि प्रीति नहीं होती। यदि मेरी किसी से प्रीति है, तो अवश्य कोई न कोई मेरा उससे प्रयोजन सिद्ध होता है। जिस दिन कोई प्रयोजन न रहेगा, उसी दिन प्रीति भी स्वतः जाती रहेगी।

३८

लक्ष्मी का फल केवल लक्ष्मी को संग्रह करके मर जाना नहीं है; किन्तु उससे दूसरों का उपकार करना और धर्म का मार्ग चलाना है। जो लोग निरन्तर लक्ष्मी का संचय करते हैं और दान-धर्म में व्यय नहीं करते हैं, वे लक्ष्मी के केवल रखवाले और दास हैं। उनके पास लक्ष्मी होना न होना बराबर है। जो मनुष्य पापरूपी लक्ष्मी ग्रहण नहीं करते अथवा ग्रहण करके ममत्व छोड़कर क्षणमात्र में उसे त्याग देते हैं, वे धन्य हैं।

३९

जो मनुष्य स्वार्थ में लिप्त रहता है, वह स्वयं अपना शत्रु है और उसके चारों ओर शत्रु घिरे रहते हैं, परन्तु जो मनुष्य स्वार्थ को त्याग देता है, वह स्वयं अपना रक्षक है और उसकी रक्षा लिये उसके चारों ओर मित्र घिरे रहते हैं। अतएव तुम भी अपनी इन्द्रियों को अपने वश में कर लो, अपने हृदय को शुद्ध बना लो, अपने ऊपर अधिकार प्राप्त कर लो, तुम्हारे सम्पूर्ण दुःख दूर हो जायँगे, फिर तुहें कोई शिकायत नहीं रहेगी।

४०

अपने भीतर देखो, खूब सोचो विचारो, और अपने दोषों के ढूंढ़ने में तनिक भी संकोच मत करो। कठोर हृदय होकर अपने दोषों को देखो। संभव है कि तुम्हें अपने भीतर नीच और कुत्सित विचार मिल जायँ। इन नीच विचारों और आदतों को छोड़ दो। अपनी इन्द्रियों के दास मत बनो। बस फिर तुम्हें कोई दास नहीं

बना सकता। तुम उस समय तक दूसरों के दास हो, जब तक कि तुम स्वयं अपने दास बने हुए हो।

४१

तुम अपने ही विचारों से अपने जीवन को बनाते और बिगाड़ते हो। जैसे तुम्हारे मन में विचार होंगे, वैसा ही तुम्हारा जीवन होगा और वैसी ही तुम्हारी बाह्य अवस्था होगी। जो कुछ हम हैं, वह सब हमारे ही विचारों का परिणाम है। हमारा जीवन हमारे ही विचारों पर स्थित है और हमारे ही विचारों से बना हुआ है।

४२

जिन लोगों ने नेकी और सचाई का रास्ता छोड़ दिया है, उन्हें दूसरों के सामने अपनी रक्षा करने की जरूरत है। परन्तु जो लोग सदा नेकी पर चलते हैं उन्हें इस प्रकार की रक्षा की कोई जरूरत नहीं है। आजकल भी ऐसे आदमी मौजूद हैं जिन्हों ने सत्य और विश्वास के

बल पर कभी भी किसी प्रकार के विरोध की चिन्ता नहीं की और अपने मार्ग से कभी विचलित नहीं हुए तथा उन्नति के शिखर पर पहुँच गये।

४३

मूर्ख और अज्ञानी लोग समझते हैं कि संसार की प्रत्येक वस्तु पर अधिकार प्राप्त किया जा सकता है, परन्तु आत्मा के ऊपर विजय या अधिकार प्राप्त करना बड़ा कठिन है। वे अपना तथा दूसरों का सुख केवल बाह्य पदार्थों में ही ढूँढ़ते हैं; परन्तु यह उनका भ्रम है। सांसारिक पदार्थों से मनुष्य को कभी स्थायी सुख नहीं मिल सकता। जब तक अपने ऊपर अधिकार प्राप्त नहीं किया जाता है तब तक बाह्य पदार्थों पर भी अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता है। जब अपने ऊपर अधिकार प्राप्त किया जाता है तब बाह्य पदार्थ स्वयम् अपने अधीन हो जाते हैं।

४४

मनुष्य आदतों का गुलाम है। विचार या कार्य करने से जैसी आदत मनुष्य में पड़ जाती है वैसा ही वह बन जाता है। आदतों का छोड़ना या ग्रहण करना दृढ़ संकल्प पर निर्भर है। जब तक मनुष्य दृढ़प्रतिज्ञ नहीं होता तब तक बुरी आदतों का छोड़ देना कठिन है। मनुष्य के कार्य में उसकी आदतें बाधक नहीं हैं; किन्तु उसके हृदय की निर्बलता बाधक है। मन के बदलने से मनुष्य का चरित्र, उसकी आदतें और जीवन तक बदल जाता है।

४५

मनुष्य अपना स्वामी और मुक्तिदाता आप ही है। वह आप ही अपने को दासत्व के बन्धन में डालता है और आप ही उससे मुक्त होता है। मनुष्य अपने भीतर अच्छे या बुरे विचारों के सिवा वाह्य में किसी वस्तु से भी बँधा हुआ नहीं है। यदि मनुष्य को स्वतंत्र

होने की इच्छा है तो नीच और पामर विचारों को अपने मन से सदैव के लिये निकाल डाले और अच्छे विचारों को स्थान दे जिससे सुख की प्राप्ति हो।

४६

मनुष्य अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिये वाह्य पदार्थों को नहीं बदल सकता किन्तु अपनी इच्छाओं को बदल सकता है, और ऐसा बदल सकता है कि वाह्य पदार्थ उसके अनुकूल हो सकते हैं। अपने विचारों को बदल दो, वाह्य पदार्थ भी बदल कर नवीन रूप धारण कर लेंगे।

४७

वाह्य वस्तुओं के कारण हम स्वतंत्र नहीं हैं। हमारे विचार ही हमें स्वतंत्र और परतंत्र बनाये हुए हैं। मनुष्य ही सब कुछ है, उसे अपने विचारों को ठीक रखना चाहिये।

४८

हमें मृत्यु से कदापि नहीं डरना चाहिये

और अपने को मृत्यु के लिये तैयार रखना चाहिये एवं सदैव मृत्यु का स्वागत करना चाहिये। परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि हम ऐसा जीवन व्यतीत करें जिससे जन्म-मरण रूपी रोग नष्ट हो जाय।

४६

आत्मा के ध्यान के सिवा अन्य समस्त ध्यान भयानक संसार का कारण है। ध्यान ध्येय आदि का विकल्परूप जो तप है सो रूप कहने मात्र ही सुन्दर है ऐसा समझकर बुद्धि-मान पुरुष स्वाभाविक एक परमात्मा का ही अनुभव करते हैं।

५०

इस अनादिकाल के महान् अज्ञान के नाट्य-रूप संसार में वर्णादिरूप पुद्गल ही नृत्य कर रहा है दूसरा कोई नहीं। अर्थात् पुद्गल के निमित्त से ही जीव संसारचक्र में घूम रहा है। यदि जीव के यथार्थ स्वरूप का विचार करे तो

यह जीव रागद्वेषादि पुद्गल के विकारों से विरुद्ध शुद्ध चैतन्य धातु की एक अपूर्व मूर्ति है।

५१

अशुभ कर्म के उदय में हार और शुभ कर्मों के उदय में विजय मानना यह भाव जुआ है। शरीर में लीन होना यह भाव मांस भक्षण है। मिथ्यात्व से मूर्च्छित होकर अपने स्वरूप को भूलना यह भाव वेश्या-सेवन है। कठोर परिणाम रखकर प्राणों का घात करना यह भाव शिकार है। देहादि परवस्तुओं में आत्म-बुद्धि रखना यह भाव परस्त्री संग है। अनु-रांग पूर्वक परपदार्थों के ग्रहण करने की अभिलाषा करना यह भाव चोरी है। ये सातों व्यसन आत्मज्ञान को बिगाड़ने वाले हैं।

५२

यही आत्मा कहीं अपने सत्य गुणों से शोभता है, कहीं अशुद्ध गुणों से विराजता है, तथा कहीं अशुद्ध पर्यायों से शोभता है। ऐसा

होने पर भी यह जीव तत्व समस्त विभाव पर्यायों से रहित है। अपनी इस अवस्था को कर्मकृत मान इसको त्याज्य समझ कर इससे उदासीन बुद्धि करके निज स्वभाव में रमने की उत्कण्ठा करनी योग्य है।

५३

जैसे मनुष्य के मानसिक विचार होते हैं उन्हीं के अनुसार उसके जीवन की घटनाएँ होती हैं जो उसके जीवन को बनाती और बिगाड़ती हैं। प्रत्येक आत्मा में भिन्न २ प्रकार के अनेक विचार और अनुभव भरे होते हैं और शरीर उनके प्रकाश करने का प्रत्यक्ष साधन होता है। अतएव जैसे तुम्हारे विचार हैं, यथार्थ में वैसे ही तुम स्वयं हो।

५४

चाहे कोई मनुष्य भयभीत हो या निर्भय, मूर्ख हो या बुद्धिमान, दुःखी हो या सुखी, उसकी प्रत्येक अवस्था का कारण उसकी

आत्मा में ही विद्यमान है, बाहर कहीं नहीं है। वाह्य अवस्थाएँ तुम पर केवल इतना ही प्रभाव डाल सकती हैं, जितना तुम चाहो, अधिक नहीं; और इसमें तनिक भी असत्यता नहीं है कि वाह्य घटनाएँ तुम पर इस कारण अधिकार जमा लेती हैं कि तुम्हें विचार-शक्ति का ठीक २ ज्ञान नहीं है।

५५

जिस प्रकार कार्य कारण का सम्बन्ध है, उसी प्रकार सुख और ऐश्वर्य का आंतरिक भलाई से और दुःख और निर्बलता का आंतरिक बुराई से सम्बन्ध है । अर्थात् जिस प्रकार कारण के अनुसार कार्य होता है, उसी प्रकार यदि तुम्हारे आंतरिक विचार अच्छे हैं तो सुख और ऐश्वर्य मिलेगा और यदि बुरे और गन्दे हैं तो दुःख और संताप मिलेगा। सुख का आधार अंतरंग जीवन है ।

५६

वही मनुष्य संसार में सफलता प्राप्त कर सकता है जिसने छोटे २ दुर्गुणों और दुराचारों को अपने मन से निकाल दिया है और जो अपने शरीर और मन पर शासन करने की शक्ति रखता है एवं जो अटलसत्य और शुद्ध चरित्र के मार्ग पर दृढ़ता से चलता है।

५७

एक प्रकार के पक्षी एक साथ उड़ते हैं और एक साथ बैठते हैं इसी प्रकार मानसिक जगत् में भी प्रत्येक विचार अपने समान विचार से सम्बन्ध रखता है। कहने का सारांश यह है कि तुम दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करो, जैसा तुम चाहते हो कि दूसरे तुम्हारे साथ करें।

५८

जो मनुष्य उच्च जीवन को प्राप्त करना चाहता है और जीवन के उद्देश्य को जानना

चाहता है, उसको चाहिये कि हृदय की बुरी अवस्थाओं और वासनाओं को त्याग दे और भलाई के अभ्यास में निरंतर तत्पर रहे। वासना में शक्ति नहीं है। इससे तो शक्ति का दुरुपयोग और विनाश होता है। अपने हृदय की रक्षा करके उसको ऐसा स्वच्छ रक्खो कि प्रति दिन उस में से बुराई कम होती जाय और भलाई बढ़ती जाय।

५६

शोक और हर्ष, दुःख और सुख, राग और द्वेष, ज्ञान और अज्ञान, आशा और भय ये सब हृदय के भीतर ही हैं अन्यत्र कहीं नहीं हैं। ये केवल मन की अवस्थाएँ हैं। मनुष्य स्वयं अपने हृदय का रक्षक, अपने मन का निरीक्षक और अपने गृहरूपी जीवन का द्वारपाल है। इस दशा में ज्ञान और आनंद के मार्ग को जाना चाहे तो अपने हृदय को भली भाँति सँभाल कर रक्खे, अपने मन को

स्वच्छ और पवित्र बनाए, नीच और गंदे विचार को अपने पास न आने दे। यदि अज्ञान और दुःख के मार्ग पर जाना है तो भले ही असावधानी से रहे और बिना किसी नियम के जीवन व्यतीत करे। दोनों बातें मनुष्य कर सकता है। जीवन का अच्छा या बुरा होना केवल उसी पर निर्भर है।

६०

मन के साधने और शिक्षित करने के लिये सब से पहली सीढ़ी आलस्य को दूर करना है और मनुष्य जब तक पूर्ण रीति से इस सीढ़ी तक पहुँच नहीं जाता तब तक दूसरी सीढ़ी पर पैर रखना असंभव है। सत्य-मार्ग की प्राप्ति के लिये आलस्य बड़ा बाधक है। आवश्यकता से अधिक सोना अथवा शरीर को आराम देना और आवश्यक कर्मों को न करके व्यर्थ समय खोना इसी का नाम आलस्य है।

६१

दूसरी सीढ़ी यह है कि स्वार्थपरता या पेटू-पन को दूर किया जाए। पेटू मनुष्य वह है जो केवल पाशविक इच्छाओं को संतुष्ट करने के लिये खाता है अर्थात् भोजन करने के सच्चे उद्देश्य को न समझ कर केवल स्वादवश खाता है। उत्तम जीवन प्राप्त करने के लिये इस आदत को छोड़ना आवश्यक है।

६२

तीसरी सीढ़ी यह है कि जिस मनुष्य का उद्देश्य उच्च जीवन व्यतीत करने का है, वह मिथ्या, निन्दात्मक और क्रूर शब्दों को जिह्वा पर लाने से पहले ही उसको रोक देगा तथा चुगली खाने की आदत को छोड़ देगा। दूसरों को दोष लगाना, उनके सम्बन्ध में मिथ्या भाषण करना, उनके अवगुणों को ढूँढ़ना और उनकी बुरी बातों को प्रकट करना इसी का नाम चुगली खाना है। इस आदत को सर्वथा छोड़ देना चाहिए।

६३

चौथी सीढ़ी यह है कि यदि शरीर में आलस्य है तो मन में भी आलस्य है। जिह्वा का वश में न होना मन के वश में न होने की सूचना देता है। बुराई से बचना भलाई की ओर जाना है और बाहर की दशाओं की चिकित्सा करना वास्तव में आंतरिक दशाओं की चिकित्सा करना है। जो मनुष्य आलस्य और स्वार्थपरता को छोड़ रहा है, वह वास्तव में शील, संयम, नियमशीलता, आत्मसमर्पण आदि गुणों को ग्रहण कर रहा है।

६४

संसार में सब पाप अज्ञानता से होता है। जब तम अधिक होता है तब पाप की ओर रुचि होती है। जिस प्रकार विद्यार्थी को उस समय तक आनन्द प्राप्त नहीं होता जब तक कि वह अपने पाठ को ठीक २ याद नहीं कर लेता है, इसी प्रकार जब तक मनुष्य पाप की

दशा से निकल नहीं जाता , उसे आनन्द प्राप्त नहीं होता है। सर्व प्रकार का दुःख मन की बुरी भावनाओं से पैदा होता है। मानसिक शांति का नाम ही सुख और मानसिक अशांति का नाम ही दुःख है।

६५

जब तक मनुष्य खोटी वासनाओं में लिप्त रहता है, उसका जीवन शुद्ध नहीं होता और उसको सदा दुःख रहता है। दुःख अज्ञानता में है और सुख ज्ञान में। अपनी अज्ञानता और भ्रम दूर करने से ही मोक्ष मिलता है। जब तक मन शुद्ध नहीं होता तब तक बन्धन और अशांति रहती है।

६६

अपना कर्तव्य कर्म चाहे कितना ही छोटा और तुच्छ हो दूसरों के कर्तव्य से अच्छा है। हरएक मनुष्य को सत्य पर अटल रहना चाहिये। यह गुण दृढ़ता से हृदय में

जम जाना चाहिये । सब प्रकार की बेईमानी, चालाकी धोकेबाजी और पापाचार को सदैव के लिये त्याग देना चाहिये । भय नहीं रखना चाहिये । सत्य के मार्ग से जरा भी हटना सदाचार से हटना है । स्वार्थ और लाभ के लिये छल, कपट नहीं करनी चाहिये । जब उसे सत्य के गुणों का पूरा २ अभ्यास हो जाएगा तब उसका हृदय स्वच्छ और पवित्र हो जायगा और सत्याचरण दृढ़ होगा ।

६७

वेपरवाई से रहने वाला मनुष्य दुःख और शोक से नहीं बच सकता है । अनियमित मनुष्य निर्बल और असहाय होने के कारण कषाय और वासना के वश होकर गिर पड़ता है । अपने मन को पूरे तौर से तैयार कर लो । सावधान, दृढ़चित्त और विचारशील बनो । तुम्हारी मुक्ति तुम्हारे समीप है । केवल तुम्हारी तैयारी की आवश्यकता है ।

६८

जिसने अपने आत्मा पर विजय प्राप्त कर लिया है वह न किसी वस्तु की इच्छा करता है और न उसमें स्वार्थ की गंध ही रहती है। उसने अपने मन से क्रोध, मान, माया, लोभ, अहंकार, रति, अरति आदि को बिलकुल निकाल दिया है और रागद्वेष रहित भाव जिसका इष्टानिष्ट पदार्थों में हो चुका है वह मोक्ष मार्ग पर चल रहा है, ऐसा समझना असंभव की बात नहीं है।

६९

मैं दूसरों के प्रति कैसा व्यवहार करता हूँ, मैं उनके लिये क्या कर रहा हूँ, मैं उनके विषय में कैसा विचार रखता हूँ, क्या उनके प्रति मेरे विचार और कार्य निःस्वार्थ प्रेम पर निर्धारित हैं? इत्यादि प्रश्नों को यदि मनुष्य नम्र होकर शांति के साथ एकांत में अपनी आत्मा से पूछे तो इसमें तनिक संदेह नहीं कि उसे अपनी भूलों का पता लग जायगा, अर्थात् उसे मालूम

हो जायगा कि मैंने अभी तक किस २ बात में भूल की है।

७०

मन को पूर्णरूप से अपने वश में रक्खो, इससे तुम सभ्यता, स्वतंत्रता, शक्ति और विजय प्राप्त कर लोगे और कोई भी तुम्हें दुःख या कष्ट न पहुंचा सकेगा। कारण यह कि तुम्हारे सारे शत्रु तुम्हारे मन और हृदय में विद्यमान हैं। यदि तुम्हारा हृदय शुद्ध है तो तुम्हें मुक्ति भी वहीं (हृदय में) प्राप्त होगी।

७१

भगवान महावीर इत्यादि महापुरुषों में जो जो गुण थे उनसे तुम्हें कुछ भी लाभ नहीं हो सकता और न तुम उन्हें समझ ही सकते हो; जब तक कि वे तुममें न हों और तुम उनमें। वे तुम में उस समय तक नहीं हो सकते जब तक कि तुम उनका अच्छी तरह से अभ्यास

न करो। निःसंदेह किसी महापुरुष की उसके गुणों के कारण उपासना करना सत्य मार्ग की ओर जाना है, परन्तु उन गुणों का अभ्यास करना स्वयमेव सत्य है।

७२

जीवनका तत्व न्याय है न कि अन्याय, और आत्मीक राज्य को रूप देनेवाली और चलानेवाली शक्ति साधुता और सच्चरित्रता है न कि कुशील और दुश्चरित्रता। जब यह बात है, तब मनुष्य को उचित है कि वह अपना सुधार करे और साधुता और सच्चरित्रता धारण करे। उस समय उसे इस बात का ज्ञान हो जायगा कि संपूर्ण जगत् सत्य पर स्थित है।

७३

मनुष्य बल, प्रेम और बुद्धि का पुतला है और अपने विचारों का राजा है। इसलिये उसके पास प्रत्येक स्थिति और अवस्था की

कुंजी है । सद्विचारों को ग्रहण करने और उनके अनुकूल प्रवृत्ति करने से मनुष्य परमानंद को प्राप्त कर सकता है, परन्तु इसके विपरीत निंद्य एवं कुत्सित विचारों से वही मनुष्य पशुओं से भो नीचे गिर जाता है । चरित्र की ये दो ही अवस्थाएँ हैं और मनुष्य ही इनका कर्ता, धर्ता और निर्माता है ।

७४

जल में नाव रहे तो कोई हानि नहीं, पर नाव में जल रहे तो जरूर हानि है, क्योंकि इससे सब को हानि पहुंचेगी। इसी प्रकार साधक संसार में रहे तो कोई हानि नहीं है परन्तु साधक के भीतर संसार नहीं रहना चाहिये, क्योंकि इससे साधक को अपने उद्देश्य की पूर्ति में विघ्न आ जायगा।

७५

पर-द्रव्य और पर-नारी की जहां अभि-लाषा हुई वहीं से भाग्य का ह्रास आरम्भ

हुआ। बड़े बड़े इनके चक्कर में मटियामेट हो गये। इसलिये इन दोनों को छोड दे, इसी से अन्त में सुख मिलेगा।

७६

जिसने इच्छा का त्याग किया है उसको घर छोड़ने की क्या आवश्यकता और जो इच्छा का बन्धा हुआ है उसको बन में रहने से क्या लाभ? सच्चा त्यागी जहां रहे वहीं उसका बन और वहीं उसका घर है।

७७

राग के समान आग नहीं, द्वेष के समान भूत-पिशाच नहीं, मोह के समान दुःख नहीं, और तृष्णा के समान नदी नहीं। कौन तेरी स्त्री है, कौन तेरा पुत्र है, यह संसार अतीव विचित्र है। हे भाई! तू कहाँ से आया है तुझे और कहाँ जाना है, इस तत्व का विचार कर।

७८

जो गये हुए का स्मरण नहीं करता है, मिले

हुए की इच्छा नहीं रखता, अंतःकरण में मेरु के समान अचल रहता है और जिसका अंतःकरण "मैं-मेरा" भूला रहता है एक वही निरंतर संयमी रहता है।

७६

जीवन की बुराइयाँ वास्तव में मन की बुराइयाँ हैं। उनसे छुटकारा धीरे २ मिलता है। मनुष्य यदि चाहे तो बुराई को छोड़ सकता है चाहे तो ग्रहण कर सकता है। ये दोनों बातें उसके लिये प्राप्त हैं। परन्तु यह खूब स्मरण रहे कि जो मनुष्य अपने हृदय से स्वार्थ, कुवासना, कुत्सित विचार, कठोर परिणाम, विषय-कषाय इन्हीं को नहीं निकाल देता है, वह सत्य के मार्ग को कदापि ग्रहण नहीं कर सकता है

८०

जो मनुष्य दूसरों को गाली देता है या दूसरों को दोष लगाता है वह स्वयं सत्य-मार्ग से भटका हुआ है। जब किसी मनुष्य की प्रवृत्ति

गाली देने या बुराई करने की ओर हो तो उसे चाहिये कि वह अपनी जिह्वा को रोक ले और स्वयं अपने ऊपर दृष्टि डाले।

८१

सत्य की प्राप्ति के लिये नियमबद्ध होने की आवश्यकता है। जो मनुष्य स्वार्थी है उसे नियम बुरा मालूम होता है और इसलिये वह नियम से बचता फिरता है एवं अनियमित रूप से जीवन व्यतीत करता है। उद्योग और अभ्यास से धैर्य बढ़ता है और धैर्य नियम को सुन्दर बना देता है। नियम स्वतः सुन्दर है और उसका परिणाम भी मधुर है। नियम से बद्ध होने में स्वार्थ घटता है।

८२

इन्द्रियों के भोगों को भोगकर सुख की इच्छा करना महान् मूर्खता है। जैसे कोढ़ी लोगों को खाज खुजलाने की इच्छा इसलिये होती है कि खाज मिट जावे, इससे उनकी खाज मिटती

नहीं उल्टी बढ़ जाती है, वैसे ही इन्द्रियों के भोग से जो तृप्ति चाहते हैं उनको कभी तृप्ति या संतोष नहीं होता है, उल्टी तृष्णा की आग बढ़ती जाती है। इसलिये जिसको सुख की इच्छा हो उसे तो आत्मिक सुख की खोज करनी चाहिये।

८३

मेरा अपना क्या है? उत्तर—मेरा अपना, मेरा आत्मा है। सिवाय आत्मा के कोई अपना नहीं है। आत्मा में जो ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्यादि गुण हैं वे ही मेरी सम्पति हैं। मेरा द्रव्य अखण्ड गुणों का समुदाय मेरा आत्मा है। मेरा क्षेत्र असंख्यात प्रदेशी मेरा आत्मा है। मेरा काल मेरे ही गुणोंका शुद्ध परिणाम है। मेरा भाव मेरा शुद्ध ज्ञानानन्दमय स्वभाव है। सिवाय इसके कोई अपना नहीं है।

८४

जिस प्रकार सोने का और पत्थरका हमेशा

से सम्बन्ध है, उसी प्रकार जीव और कर्म का सम्बन्ध है। जिस प्रकार चुम्बक पत्थर में खींचने की शक्ति है उसी प्रकार लोहे में भी खींचे जाने की शक्ति है। यदि दोनों में खींचने और खींचे जाने की शक्ति न मानी जाय तो चुम्बक पत्थर के सिवाय पीतल चांदी आदि से लकड़ी पत्थर भी खींचने चाहिये। इसलिये मानना पड़ता है कि दोनों में क्रम से खींचने और खींचे जाने की शक्ति है। उसी प्रकार जीव में कर्म के बांधने की शक्ति है और कर्म में बंधने की शक्ति है। जब तक इन दोनों का सम्बन्ध है तब तक संसार है और आत्मा से संपूर्ण कर्मों का क्षय हो जाना मोक्ष है।

८५

बुद्धिमान मानव वे ही हैं जो विचारके साथ इस संसार में काम करते हैं। हर एक मानव को अपना लक्ष्यविन्दु बना लेना चाहिये और जो लक्ष्य हो उसको मन, वचन, काय से करना

चाहिये। जिसको शीत लग रही है और शीत से बचना चाहता है तो वह अग्नि को कभी नहीं बुझावेगा क्योंकि अग्नि उसके हित में साधक है। इसी तरह जो बुद्धिमान लोग अपनी आत्मा की उन्नति करना चहते हैं वे ऐसे ही साधनों को प्राप्त करेंगे जिनसे तत्वों का ज्ञान होकर यह विवेक हो जावे कि क्या त्यागने योग्य है या क्या ग्रहण करने योग्य है तथा जिस चारित्र से मोक्ष का लाभ होगा उसी चारित्र को पा लेंगे और जिस ध्यान से कर्म पर्वतों का चूरा हो वैसा ही ध्यान करेंगे, कभी भी ऐसे प्रपंचों में न फँसेंगे कि जिनमें फँसने से तत्वज्ञान न हो, कर्म का नाश न हो और मोक्ष की प्राप्ति न हो।

८६

हे भाई! तू किस पर राग करेगा और किस पर द्वेष करेगा जरा तुझे विचारना चाहिये। यदि तू मित्र के शरीर से राग और

शत्रु के शरीर से द्वेष करे तो यह तेरी मूर्खता ही होगी क्योंकि शरीर बेचारा जड़-अचेतन है वह न किसी का बिगाड़ करता है न किसी का सुधार करता है। शरीर के सिवा उनका आत्मा है उनको यदि सुख का तथा दुःख का देने वाला माने तो वह आत्मा बिलकुल नहीं दीखता है। तो तेरा इष्टानिष्ट पदार्थों में रागद्वेष करना व्यर्थ है।

८७

जब तक मन नहीं मरता है तब तक सर्व मोह का क्षय नहीं होता है। मन के मरने पर मोह का क्षय हो जाता है व मोह के क्षय होने के पीछे घातिया कर्म भी क्षय हो जाते हैं। जैसे राजा के मरने पर उसकी सब सेना अपने प्रभाव से रहित हो युद्ध से स्वयं भाग जाती है वैसे मोह राजा के नाश होने पर सर्व घातियां कर्म गल जाते हैं॥

८८

पानी स्वभाव से ही शीतल, मीठा और निर्मल होता है परन्तु नीम में जाकर अपने स्वभाव को छिपाकर कड़ुवा, नींबूमें जाकर खट्टा, आँवले में जाकर कषायला, ईख में जाकर बहुत मीठा इत्यादि रूप हो जाता है। कोई प्रयोग करे तो वही पानी फिर अपने स्वभाव में आ सकता है। इसी तरह यह संसारी जीव स्वभाव से ही सिद्ध भगवान के सामन है।कर्मों के मध्य में पड़ा हुआ अज्ञानी व रागी द्वेषी हो रहा है। कर्मों के संयोग के दूर होते ही फिर स्वभाव में शुद्ध हो जाता है।

८९

हे आत्मन्! जिन २ वस्तुओं को तू अपनी मानकर उनसे प्रीति करता है और उनके लिये शोक करता है वे सब पदार्थ तेरे साथ सदा रहनेवाले नहीं हैं। उन सब की अवस्था बदलती रहती है, उनका सम्बन्ध तेरे साथ धूप—छाया के समान होता है और मिटता है। ये शरीर

परमाणुओं से बनते हैं और उनके बिछुड़ने पर बिगड़ जाते हैं—ये सब स्थिर रहनेवाले नहीं हैं। इसी तरह पांचों इन्द्रियों के साधक पदार्थ रुपया, पैसा, मकान, जमीनादि एक दशामें रहनेवाले नहीं हैं या तो ये स्वयं नष्ट हो जायँगे वा हम शरीर छोड़ते हुए इनको छोड़ जायँगे। हमारा अपना यदि कोई सदा साथ देनेवाला है तो एक अपना ही ज्ञानदर्शनोपयोगधारी आत्मा है। इसलिये निज आत्मा के सिवाय सर्व सम्बन्ध को क्षणिक मान कर हमें परम ध्रुव स्वभावधारी निज आत्मा ही का मनन करना चाहिये।

९०

जब इस आत्मा में कर्मों के उदय का निमित्त नहीं होता है तब तो यह अपने शुद्ध स्वभाव में परिणमन किया करता है और जब मोहादि कर्मों के उदय का निमित्त होता है तब यह रागादि अशुद्ध भावों में परिणमन कर जाता है। जैसे स्फटिक मणि में अनेक वर्ण

का संयोग होने से स्फटिक का सफेद वर्ण अनेक वर्णरूप परिणमन कर जाता है और जब अनेक वर्णों का संयोग नहीं होता तब वह अपने स्वाभाविक निर्मल भावों में ही झलकता है।

६१

यह कर्मबद्ध संसारी आत्मा मूर्तिमान है क्योंकि मदिरा आदि से इसका ज्ञान बिगड़ जाता है। यदि अमूर्तिक होता तो जैसे अमूर्तिक आकाश में मदिरा रहते हुए आकाश को मदवान नहीं कर सकती वैसे आत्मा के कभी ज्ञान में विकार न होता। संसारी आत्मा मूर्तिक है इसी से उसके कर्मबन्ध होता है। जैसा आत्मा निश्चय से अमूर्तिक है वैसे उसके निश्चय से बन्ध भी नहीं है। जैसे आत्मा व्यवहार से मूर्तिक है वैसे उसके व्यवहार से बंध भी होता है। यदि सर्वथा शुद्ध आत्मा होता तो इसके बन्ध भी नहीं हो सकता था। इसलिये

मानना पड़ता है कि अनादि संसार में कर्म सहित ही आत्मा जैसा अब प्रगट है वैसा अनादि से ही चला आ रहा है। अतएव जिस तरह बने इन्हीं कार्मों का नाश करने में तत्पर रहना चाहिये।

६२

यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो इन्द्रिय-जनित सुख, सच्चा सुख नहीं किन्तु सुखाभास है। क्योंकि ये अस्थिर, अन्त में विरस, पराधीन, वर्तमान में दुःखमय और भविष्यत् में दुःखों के उत्पादक हैं। अतएव सच्चे सुख के वाञ्छक पुरुषों को शाश्वत आत्मीक स्वाधीन सुखकी खोज करनी चाहिये।

६३

लोहे की जंजीर शरीर के बल से टूट जायगी, परन्तु मोहरूपी जंजीर बहुत प्रबल है। वह शरीर के बल के द्वारा नष्ट नहीं होती किन्तु उसको वैराग्य और ज्ञानरूपी बल से नष्ट कर सकते हैं।

६४

जब आत्मा की चैतन्यशक्ति अपेक्षा देखा जाता है तो वनस्पति, कीड़े, मकोड़े, पशु; पक्षी, देव, मनुष्य, नारकी आदि सभी जीव चैतन्यशक्ति युक्त हैं; इस नाते से छोटे, बड़े सब जीव आपस में भाई २ हैं, ऐसी दशा में किसी भी जीव का बध करना भ्रातृवध के समान महा पापबन्ध का कारण है। दूसरे अनादि काल से संसार में भ्रमते हुए जीवों के अनेक बार आपस में पिता, माता, भ्राता, पुत्र, स्त्री, बहिन, बेटी आदिके नाते हुए, इसलिये उनको कष्ट देना, उसका बध करना, धर्मपद्धति से सर्वथा विरुद्ध है। तीसरे जब कोई अपना छोटा-सा भी शत्रु हो, तो मन में सदा उसकी तरफ चिंता लगी रहती है। भला फिर जब सहस्रों जीवों का नित्यप्रति चलते, उठते, बैठते विध्वंस किया जाए, बाधा पहुँचाई जाय तो उनसे शत्रुता उत्पन्न करके निश्चि-

न्ततापूर्वक धर्मसाधन करना कैसे संभव हो सकता है ? कदापि नहीं। इस प्रकार हिंसा को महापाप समझ कर त्यागने का दृढ़ संकल्प करना सत्य के मार्ग पर चलना है ।

६५

जो जीव संसार परिभ्रमण से अपनी रक्षा करना चाहते उन्हें सदा स्व-पर दया–दृष्टि रखनी चाहिये। जो स्व-दया पालन करते हैं उन्हीं से बहुधा नियमपूर्वक परदया पालन हो सकती है। अतएव स्व-दया-निमित्त क्रोधादि विषय घटाना योग्य है और परदया निमित्त किसी भी जीव को कषाय उत्पन्न करना या शारीरिक कष्ट देना कदाचित् योग्य नहीं ।

६६

कभी कभी ऐसा होता है कि एक पुरुष तो हिंसा करता है और फल अनेक पुरुष भोगते हैं। जैसे किसी को फाँसी लगते देख कारित-अनुमोदन के दोष से हिंसा के फल के भागी

होते हैं। इसलिये हिंसा में मन, वचन, काय और कृत कारित-अनुमोदन के दोष से हरएक मनुष्य को बचना चाहिये ।

६७

कभी २ ऐसा भी होता है कि हिंसा बहुत लोग करते हैं परन्तु फल का भोक्ता एक ही होता है। जैसे सेना के लड़ते हुए संग्राम सम्बन्धी पापका भागी राजा होता है अथवा कपड़े के गिरणी में काम तो मजूरादि करते हैं, यदि उसमें नुकसान हो तो एक कम्पनी का ही होता है इसी तरह बहुत लोग हिंसा तो करते हैं परन्तु फल का भोक्ता एक ही होता है।

६८

यदि कोई जीव किसी का भला कर रहा हो और कर्मयोग से बुरा हो जाय, तो उसे पुण्य का ही फल होगा। इसी प्रकार यदि कोई जीव किसी की बुराई का प्रयत्न कर रहा हो और कर्म-योग से भला हो जाय, तो उसे पाप का ही फल होगा ।

९९

यह जीव अपने सर्व प्रदेशों में कर्मों के उदय से—नियम से इस तरह व्याकुल रहता है जैसे अग्नि के संयोग से जल गर्म होकर खल-बल करता है। किसी भी कर्म का उदय ऐसा नहीं है जो इस जीव को सुखदाई हो, क्योंकि सर्व ही कर्मों का स्वभाव जीव के स्वभाव से भिन्न है, अतएव कर्मरहित अवस्था ही ग्रहण करने योग्य है। कर्मों की संगति में जीव कभी सुखी व स्वाधीन नहीं रह सकता है।

१००

इस जीव ने स्वयं कर्मों के सम्बन्ध से इस अत्यन्त भयानक चार गति रूप संसार में भ्रमण करते हुए अनेक सुख-दुःख पाए हैं। जो अपने आत्म कार्य को छोड़कर शरीर सम्बन्धी कार्यों में लीन हो जाता है वह ममता के अधीन अपना चित्त करता हुआ अपने हितका नाश करता है,

परन्तु जो दयावान प्राणी रागद्वेषादिक भाव-रहित वीतराग भाव में स्नान करते हैं उन्हीं के शुद्धता होती है। पानी में स्नान करने से मन का शुद्धि नहीं हो सकती है।